चपाती बनाम

शैक्षिक परिवर्तन की चुनौतियाँ

शशि नायर

जब हम शैक्षिक परिवर्तन की बात करते हैं तो हमें तीन महत्त्वपूर्ण व्यापक पहलुओं के बारे में सोचना पड़ता है–"क्या","कैसे" और "कौन"। हमें इस बात को लेकर स्पष्ट होना चाहिए कि क्या चीज बदलने के लायक है। उदाहरण के लिए हमें यह बात सुनिश्चित करनी चाहिए कि सभी शिक्षक कक्षा में उपस्थित हों और पढ़ा रहे हों। जाहिर है कि हमें और भी बहुत कुछ करना है! "क्या" के अन्तर्गत व्यक्तियों, संस्थाओं और प्रणाली के काम करने के तरीकों को बदलने की बात आती है क्योंकि जब तक वे वही सब करते रहेंगे जो वे आज कर रहे हैं तब तक कुछ भी नहीं बदलेगा, कुछ भी बेहतर नहीं होगा।

लेकिन "क्या" के बारे में बात करना उस पर अमल करने की तुलना में कहीं अधिक आसान है। उदाहरण के लिए हम यह कैसे सुनिश्चित करें कि सभी शिक्षक कक्षा में उपस्थित रहें और पढ़ाएँ। काम करने के तरीकों में हम यह बदलाव कैसे लाएँ?

इसके लिए हम एक सरकारी आदेश भेज सकते हैं लेकिन हमारा अनुभव हमें बताता है कि इससे काम नहीं चलता। हम पुलिस की तरह शिक्षकों की निगरानी कर सकते हैं लेकिन इसके लिए हमारे पास पर्याप्त लोग नहीं हैं। और अगर हम ऐसा करें भी तो भी हम इस बारे में कभी आश्वस्त नहीं हो पाएँगे कि शिक्षक पूरी प्रतिबद्धता और प्रेरणा के साथ शिक्षण कर रहे हैं। वास्तव में दुनिया भर में हुए अनुसन्धानों से पता चलता है कि बाह्य रूप से जवाबदेही लागू करने के अधिकतर प्रयास विफल रहे हैं। इस समस्या का समाधान करने के लिए एवं दूसरे कई तरीकों में बदलाव लाने के लिए हमें क्षमताओं के तीन सेटों की जरूरत है:

1. वास्तविक अन्तर्निहित समस्याओं को समझने के लिए हमें नैदानिक क्षमताओं की आवश्यकता है और शायद हमें यह जानकर आश्चर्य हो कि असल में समस्याएँ वे नहीं हैं जो हम समझ रहे हैं!
2. हममें उचित समाधानों का संश्लेषण करने की क्षमता होनी चाहिए और इसके लिए शैक्षिक बदलावों के वृहत ज्ञान की आवश्यकता है, जो हमें यह बतलाए कि कौन–सी चीज काम करेगी और कौन–सी नहीं।
3. इन समाधानों को कार्यान्वित करने के लिए हमें परिवर्तन के सुगमीकरण की उन क्षमताओं की जरूरत होगी जो अत्यन्त जटिल हैं और जिनके लिए बहुत विशेषज्ञता की आवश्यकता है।

तो हम यह देख सकते हैं कि "क्या" का उत्तर देने की तुलना में "कैसे" का उत्तर देना ज्यादा कठिन है।

"कैसे" से सम्बन्धित विचार हमें तीसरे महत्त्वपूर्ण व्यापक पहलू "कौन" की ओर ले जाता है यानि वह कौन होगा जिसे प्रभावी परिवर्तन सुगमकर्ता बनने के लिए विशेषज्ञता की आवश्यकता होगी। क्या यह काफी है कि प्रत्येक राज्य के शिक्षा विभाग के कुछ लोग इसमें विशेषज्ञता हासिल कर लें? क्या ये थोड़े से लोग बड़ी संख्या में मौजूद व्यक्तियों, संस्थानों और प्रणाली की अनगिनत समस्याओं का समाधान करने में सक्षम हो पाएँगे? यह स्पष्ट है कि जिस बड़े पैमाने पर हमें काम करना है उसके लिए हमें बड़ी संख्या में अत्यन्त दक्ष परिवर्तन सुगमकर्ताओं की जरूरत पड़ेगी।

अब तक तो यह स्पष्ट हो गया होगा कि हम वर्तमान में व्यक्तियों, संस्थानों और प्रणाली के काम करने के तरीकों में प्रभावी रूप से बदलाव लाने के लिए जो कुछ भी कर रहे हैं वह इस बात पर बहुत कम ध्यान देता है; हम शैक्षिक

बदलावों के वृहत ज्ञान का बहुत कम लाभ उठा रहे हैं; और हम बड़ी संख्या में अत्यन्त विशेषज्ञ परिवर्तन सुगमकर्ताओं को विकसित करने की दिशा में भी बहुत कम काम कर रहे हैं।

"क्या","कैसे" और "कौन" के बारे में संक्षेप में देखने के बाद आइए अब हम चौथे पहलू पर नजर डालें–"हम विशेषज्ञ परिवर्तन सुगमकर्ताओं को कैसे विकसित करें?"

यह तो लगभग नामुमकिन है कि ऐसी विशेषज्ञता आज के समय में इस्तेमाल किए जाने वाले परम्परागत साधनों अर्थात कक्षा प्रशिक्षण के माध्यम से विकसित हो जाए। ऐसा क्यों है–इसे समझने के लिए आइए हम बढ़िया नरम और फूली हुई चपाती बनाने के विज्ञान पर नजर डालें। हम इस विज्ञान के बारे में जानते हैं–पहले हम अच्छी तरह से आटा गूँधते हैं और उसे कुछ देर के लिए रख देते हैं ताकि उसमें सही स्तर की नमी और लचीलापन आ जाए। ऐसा करने से हम पतली–पतली चपातियाँ बेल सकते हैं। अब हम चपाती को तवे पर आँच पर रखते हैं और इस बात का ध्यान रखते हैं कि आँच एकदम सही तापमान पर हो। फिर हम उसे दोनों ओर से सिर्फ उतना सेंकते हैं जिससे एक पतली–सी परत बन जाए, जो भाप से अभेद्य हो। फिर हम चपाती को तब तक लौ पर पकाते हैं जब तक कि अन्दर बनी हुई भाप चपाती में छेद किए बिना उसकी परतों में पूरी तरह से भर न जाए–और इस प्रकार खाने के लिए बढ़िया, फूली हुई, नरम और गरम चपातियाँ तैयार हो जाती हैं। कुछ लोग इसे कला कह सकते हैं। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि विज्ञान को अच्छी तरह से समझकर प्रयोग में लाना कला है।

मैंने चपाती बनाने के बारे में जो चर्चा की है उसे पारम्परिक कक्षा प्रशिक्षण में साझा किया जा सकता है। वैसे इस बात की अधिक सम्भावना नहीं है कि केवल विज्ञान को जानकर कोई व्यक्ति पहली ही बार में बढ़िया चपाती बना लेगा। ऐसा क्यों है? क्योंकि ऐसी कई बातें हैं जो ऊपर बताए गए विज्ञान में नहीं बताई गई हैं जैसे कि नमी का सही स्तर क्या है? लचीलेपन का सही स्तर क्या है? आँच का सही स्तर क्या है? मुझे यह कैसे पता चलेगा कि चपाती की परत कितनी पतली हो कि उसमें भाप से छेद न होने पाए। इन अज्ञात सवालों के जवाब अनकहे ज्ञान में निहित हैं। वे आटा गूँधने वाले व्यक्ति की उँगलियों के स्पर्श ज्ञान में छिपे हैं। वे उस दिमाग में छिपे हैं जो यह जानता है कि कितनी आँच ठीक रहेगी। इस प्रकार का ज्ञान शब्दों में प्रभावी ढंग से व्यक्त नहीं किया जा सकता। उन्हें जानने के लिए व्यक्तिगत रूप से उनका अनुभव करना पड़ता है और यही विशेषज्ञता के विकास की कुंजी है।

आइए, अब हम इस उदाहरण का उपयोग यह समझने के लिए करें कि विशेषज्ञता कैसे विकसित होती है? विज्ञान को समझने वाला कोई भी व्यक्ति प्रयत्न–त्रुटि विधि के माध्यम से इस विशेषज्ञता को विकसित कर सकता है। लेकिन हमें यह पता लगाना है कि किसी नौसिखिए में विशेषज्ञों की मदद से इसे औपचारिक रूप से कैसे विकसित किया जाए। इसका एक प्रकट हिस्सा है ज्ञान जो विज्ञान को समझने से जुड़ा हुआ है–और जो दिया हुआ है। दूसरा हिस्सा है नौसिखिए के लिए खुद चपाती बनाने का प्रयास करने के लिए अवसर उपलब्ध कराना यानि अनुप्रयोग। तीसरा है कोचिंग जो विशेषज्ञ के लिए है कि वह नौसिखिए को अपनी सफलता और असफलता सम्बन्धी अनुभवों पर चिन्तन–मनन करने दे ताकि वे अपने अनुभवों को विज्ञान के साथ इस प्रकार से जोड़ सकें कि विज्ञान जीवन्त हो उठे और लगभग जादुई–सा हो जाए। पर्याप्त अनुप्रयोगों और चिन्तन–मनन की सहायता से नौसिखिए भी विशेषज्ञ बन जाएँगे। ऐसे लाखों लोग हैं जिन्होंने ऐसी चपातियाँ बनाने की विशेषज्ञता हासिल कर ली है कि जो मुँह में रखते ही घुल जाएँ।

कहने की जरूरत नहीं कि शैक्षिक परिवर्तन का सुगमीकरण चपाती बनाने की तुलना में कहीं अधिक जटिल है, लेकिन विशेषज्ञ परिवर्तन सुगमकर्ताओं के विकास के सिद्धान्त इनसे बहुत अलग नहीं हैं।

ऐसे दूसरे क्षेत्र भी हैं जो विशेषज्ञता के विकास के विचार को गम्भीरता से लेते हैं। उदाहरण के लिए चिकित्सा के क्षेत्र को ही ले लीजिए। इसमें वैसे तो ज्ञान की विशाल मात्रा की जरूरत है लेकिन बात वहीं खत्म नहीं होती। इनके अभ्यास और अनुप्रयोग के ढेर सारे अवसर भी हैं (कम से कम दुनिया के उन स्थानों पर जहाँ इसे पेशेवर ढंग से किया जाता है); और एक इंटर्न के रूप में, महत्त्वाकांक्षी चिकित्सक विशेषज्ञ डॉक्टरों के मार्गदर्शन में काम करते हैं, जो सीखने के लिए तैयार इन इंटर्न्स को व्यावहारिक रूप से अभ्यास करने का मौका देते हैं।

हम अपने शिक्षा के प्रक्षेत्र में ही देखें तो फिनलैंड में प्राथमिक स्कूल के शिक्षक के रूप में योग्यता पाने के लिए शोध पर आधारित स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करनी पड़ती है।

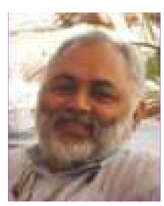
अब समय आ गया है कि हम यह बात समझें कि शैक्षिक परिवर्तन एक गम्भीर मुद्दा है और यह परिवर्तन तभी सम्भव है जब हम चीजों को अलग तरह से करें–

1. विज्ञान को समझें
2. परिवर्तन सुगमकर्ताओं को विशेषज्ञों के रूप में विकसित करने का प्रयत्न करें, और
3. उनका महत्त्वपूर्ण समूह बनाएँ

अगर हम ऐसा न करें तो क्या परिवर्तन की उम्मीद कर सकते हैं?

हमारे देश में एक आम धारणा यह है कि यहाँ की शिक्षा नीतियाँ तो अच्छी हैं लेकिन समस्या उनके कार्यान्वयन को लेकर है। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि ऐसा नहीं है। अगर नीतियों का कार्यान्वयन नहीं किया जा सकता तो वे "अच्छी" नीतियाँ नहीं हैं, वे मात्र इच्छा–सूचियाँ बनकर रह जाती हैं। किसी नीति के कार्यान्वयन के लिए उसके साथ ऐसे निर्णयों का होना जरूरी है (यानि कि अन्य सहायक नीतियों का) जो ऐसी समर्थकारी परिस्थितियाँ पैदा करें कि उनका कार्यान्वयन हो सके। वर्तमान में "क्या" को तो नीति निर्माताओं पर छोड़ दिया जाता है और परिवर्तन को "कैसे" लाया जाए –इस बात को बुनियादी स्तर पर काम करने वालों पर छोड़ दिया जाता है। ये काम करने वाले समर्थकारी परिस्थितियों के अभाव में नीतियों को लागू करने में संघर्षरत रहते हैं और "कार्यान्वयन की विफलता" का आरोप भी ढोते हैं। फिर भी शैक्षिक परिवर्तनों पर किए गए दशकों के शोध हमें बताते हैं कि "कैसे" की तुलना में "क्या" काफी आसान होता है। दिलचस्प बात यह है कि जब हम "कैसे" को समझ जाते हैं तो "क्या" अपने आप बदल जाता है (पर यह एक अलग कहानी है)। जो नीतियाँ शैक्षिक परिवर्तन के ऐसे शोधों को समझे बिना बनाई जाती हैं वे अच्छी नीतियाँ प्रतीत तो हो सकती हैं, लेकिन दुनिया भर में हुए शोध हमें बताते हैं कि उन्हें लागू नहीं किया जा सकता। शैक्षिक परिवर्तन को समझे बिना बेहद नेकनीयती से बनाई गई नीतियाँ भी बड़ी आसानी से बोझ को नीति निर्माताओं पर न डालकर काम करने वालों पर डाल देती हैं और इसका परिणाम भी वही होता है "कार्यान्वयन की विफलता"।

अब वक्त आ गया है कि हम यह "बोझ" नीति निर्माताओं को लौटा दें। लेकिन हम किस "बोझ" की बात कर रहे हैं? हम ऐसी नीतियाँ बनाने की बात कर रहे हैं जो लागू करने योग्य हों, जो समर्थकारी परिस्थितियों की रचना करें, जो इस बात पर आधारित हों क्या बात कारगर होगी और कैसे। अब समय आ गया है कि नीति के निर्माता शैक्षिक परिवर्तन पर हुए शोधों को समझें, शैक्षिक परिवर्तन के "क्या","कैसे" और "कौन" का जवाब देना शुरू करें और परिवर्तन सुगमकर्ताओं का ऐसा समूह तैयार करें जो शैक्षिक परिवर्तन लाने में सक्षम हों।



शशि नायर ने आई.आई.टी. मद्रास से सिविल इंजीनियरिंग और आई.आई.एम. बेंगलूरु से एम.बी.ए. की पढ़ाई की है। उन्होंने 17 वर्षों तक आई.टी. प्रशिक्षण और शिक्षा के क्षेत्र में काम किया है जिनमें से 14 वर्ष वे सी.ई.ओ. रहे। 2006 से वे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के साथ हैं। उन्होंने पब्लिक स्कूल शिक्षा प्रणाली के साथ बहुत निकटता से काम किया है। साथ ही उन्होंने उन प्रणालीगत बाधाओं का अवलोकन करके उनके समाधानों की पहचान की है जिनके कारण आई.ए.एस. अधिकारी से लेकर शिक्षकों तक के विभिन्न स्तर वाले लोगों के लिए प्रणाली में सुधार लाना मुश्किल हो जाता है। उन्होंने विभाग के भीतरी परिवर्तन का सुगमीकरण करने वाले बड़े पैमाने के कार्यक्रमों पर भी काम किया है। सम्प्रति वे अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं जहाँ उनकी अभिरुचि शैक्षिक परिवर्तन; निदान, डिजाइन व स्कूली शिक्षा प्रणाली का दृढ़ीकरण एवं शिक्षा नेतृत्व व प्रबन्धन में है। उनसे shashi@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** नलिनी रावल